आध्यात्मिक प्रश्नोत्तरी

प्रश्न–१ – षट्चक्रादि किस नाड़ी के मध्य किस नाड़ी को केन्द्र करके अवस्थान करते हैं?

उत्तर – मूलाधार चक्र के केन्द्रस्थल में सुषुम्ना नाड़ी के मध्य वज्रा नाड़ी, जिसके मध्य चित्रा नाड़ी स्थित है; इसी चित्रा नाड़ी को अवलम्बन कर स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा ये पाँच चक्र अवस्थान करते है; और ब्रह्मनाड़ी सूत्र की तरह षट्चक्रादि को ग्रथित किए रहती है अर्थात् षट्चक्रों के मूल केन्द्र से होकर ब्रह्मनाड़ी गुजरती है।

प्रश्न–२ – हमारी आत्मसत्ता के गुणत्रय क्या–क्या है? गुणत्रय कँहा से समुद्भूत होते है?

उत्तर – आत्मसत्ता के गुणत्रय – सत्व–रजः और तमः है। आत्मसत्ता का गुणत्रय पुरुष अर्थात् आत्मा के अस्तित्व से समुद्भूत होते है। गुणत्रय अनात्म वस्तु है, उनका कोई अस्तित्व नहीं है। आत्मा के अस्तित्व की बोधमय सत्ता के कारण गुणत्रय सत्ता की प्रतीति दृष्टिगोचर होती है।

प्रश्न–३ – सुषुम्ना का वर्ण एवम् इसके मध्य अवस्थित नाड़ियों के वर्ण क्या–क्या है?

उत्तर – सुषुम्ना का वर्ण नील है। सुषुम्ना के मध्य अवस्थित वज्रा नाड़ी का वर्ण हल्का बैगनी एवं चिन्मयी होने के उपरान्त शुभ्र विद्युत् सदृश। चित्रा नाड़ी में नाना वर्ण की विचित्र आकृतियाँ देखी जाती है। ब्रह्मनाड़ी पारद् बिन्दु की तरह उज्ज्वल शुभ्र है।

प्रश्न–४ – स्वयंभु, वाण एवम् इतर लिंग देहाभ्यंतरस्थ चक्रों के किस–किस स्थान पर अवस्थित है एवम् उनके वर्ण क्या–क्या है?

उत्तर – स्वयंभु लिंग मूलाधार में, वाण अनाहत में एवं इतर लिंग आज्ञा पद्म के ऊपरिभाग में अवस्थित है। स्वयंभु लिंग का वर्ण उज्ज्वल लोहित, वाण लिंग अतिउज्ज्वल स्वर्ण–वर्ण, इतर लिंग अति उज्ज्वल श्वेतवर्ण।

प्रश्न–५ – निरालम्बपुरी का स्थान कहाँ है?

उत्तर – आज्ञापद्म के ऊपरिभाग के आकाशमण्डल में निरालम्बपुरी अवस्थित है।

प्रश्न–६ – कूटस्थ का एक अन्य नाम क्या है? और उस नाम का तात्पर्य क्या है?

उत्तर – कूटस्थ का और एक नाम 'विश्वयोनि' है। कूटस्थ के मध्य ही विश्वाकाश में विश्व का उद्भव होता है, इसीलिए कूटस्थ को विश्व–योनि कहते है। इसी कूटस्थ के मध्य योगी–साधकों के विश्वरूप का दर्शन होता है।

प्रश्न–७ – तालव्य क्रिया का प्रयोजन क्या है? इसके द्वारा जिस ग्रंथि का भेदन होता है उससे योगियों को क्या लाभ है?

उत्तर – तालव्य क्रिया के द्वारा जिह्वा–ग्रंथि भेद होती है। जिह्वा ग्रंथि भेद होने से योगी क्रमशः खेचरी मुद्रा सिद्ध करने में सक्षम होते है। खेचरी मुद्रा साधन से देहाभ्यंतरस्थ नाड़ियों में अमृत संचार होना संभव है। परिणामतः समग्र नाड़ियाँ उस समय चिन्मय हो उठती है। सारी नाड़ियों में प्राण संचार से योगी का सम्पूर्ण शरीर उज्ज्वल दीप्त वर्ण का प्रतिलक्षित होता है, एवम् अंतर में योगी निरंतर अनुभव पद लाभ करते हैं, क्योंकि श्वास तब अंतर्मुखी होकर सुषुम्ना में अवस्थान करती हैं।

प्रश्न–८ – कूटस्थ के गगन–मण्डल पर आलोक–अंधकाराच्छन्न आकाश के वक्षपर उज्ज्वल नक्षत्ररूपी तारक–मण्डल देखा जाता है। यह अवस्था कब होती है?

उत्तर – देहाभ्यंतर समग्र नाड़ियाँ प्राणायाम के फलस्वरूप शुद्ध हो जाने से सभी नाड़ियों में प्राणों की स्थिति सर्वदा विराज करती है यही कारण है कि कूटस्थ के गगन–मण्डल पर योगी नक्षत्ररूपी तारक–मण्डल का दर्शन करते है।

प्रश्न–९ – हृदय में प्राणों की स्थिर अवस्था को क्या कहते है? उस अवस्था में योगी को कैसी अनुभूति होती है?

उत्तर – हृदय के प्राणों की स्थिर अवस्था को 'केवल' अवस्था कहा जाता हैं। उस अवस्था में योगी श्वास ले भी नहीं पाता व छोड़ भी नहीं पाता, श्वास की गति तब स्वाभाविक रूप से अवरुद्ध हो जाती है यह योगी को स्थिर अवस्था अनुभव कराती है।

प्रश्न–१० – कौन–कौन सी नाड़ियों को गंगा यमुना और सरस्वती नाम से अभिहित किया जाता है?

उत्तर – गंगा – इड़ा; यमुना – पिंगला एवं सरस्वती – सुषुम्ना नाम से जानी जाती है।

प्रश्न–११ – देहाभ्यंतरस्थ असंख्य त्रिवेणियों के मध्य मूल त्रिवेणी कितनी हैं और कौन–कौन सी है? ये कहाँ अवस्थित है?

उत्तर – देहाभ्यंतरस्थ मूल त्रिवेणियाँ दो है। नीचे मूलाधार में 'युक्त त्रिवेणी' और ऊपर आज्ञाचक्र में 'मुक्त त्रिवेणी' अवस्थित है।

प्रश्न–१२ – महामुद्रा का विशिष्ट तात्पर्य क्या हैं?

उत्तर – कुंडलिनी शक्ति का जागरण होता है एवं सुषुम्ना पथ पर आरोहण होता है। महामुद्रा के मध्य एकाधिक मुद्राओं का सन्निवेश है। जैसे गुप्त वीरासन, जानुशिरासन और पश्चिमोत्थासन; दूसरी ओर – जालंधरबंध, मूलबंध, उड्डीयानबंध। ये सभी एक साथ सुचारुरूप से साधित होते है, यही है महामुद्रा का विशेष तात्पर्य।

पुराण कथा

वेदशिरा और अश्वशिरा मुनि की कहानी

स्वायंभूव मन्वन्तर काल में भृगुवंश सम्भव वेदशिरा नाम के एक मुनि विंध्याचल में तपस्या करते थे। एकदिन अश्वशिरा नामक एक मुनिप्रवर तपस्यार्थ उनके आश्रम में समागत हुए। उसको देखकर क्रोधादीप्त मुनि वेदशिरा ने आरक्तिम नयनों से उनसे कहा, ''हे विप्र, तुम मेरे इस वनभूमि में तपस्या मत करो क्योंकि यह वन सुखप्रद नहीं है। इसके अलावा तप के लिए दूसरा कोई सुयोग्य स्थान नहीं है क्या?'' अश्वशिरा ने वेदशिरा का वाक्य सुनते ही क्रुद्ध हो कर उनको कहा, ''हे मुनिसत्तम! यह भूमि तुम्हारी भी नहीं है, मेरी भी नहीं है, यह तो महाविष्णु की हैं; शताधिक मुनि-ऋषियों ने क्या इस स्थल पर तप नहीं किया? अहो! तुम सर्प की तरह श्वास त्याग करते-करते वृथा ही क्रोध कर रहे हो, अतएव तुम सर्प होवो एवं गरुड़ से सर्वदा तुम्हें भय हो।''

वेदशिरा को इस प्रकार अभिसम्पात करने पर तब और अधिक क्रुद्ध हो कर वेदशिरा ने उन्हें कहा, ''हे दुर्मते! तुम्हारा अभिप्राय अतीव मन्द है, तुम लघुपाप में गुरुदंड दान में उद्यत हुए हो एवं काक के समान स्वकार्य साधन में तत्पर हो, अतएव तुम भूतल पर काक होवो।''

अनन्तर उभय के मध्य ऐसा परस्पर अभिशाप प्रयोग होने से तब भगवान विष्णु वहाँ आविर्भूत हुए एवं परस्पर शापित दु:खी मुनिद्वय को उन्होंने हृदयावेगपूर्ण वाक्यों द्वारा सान्त्वना प्रदान किया। भगवान ने कहा, ''हे मुनिद्वय! तुम दोनों ही मेरे देहस्थित भुजद्वय की तरह समान भक्त हो। हे मुनिवरों, मैं अपने निज वाक्य को अन्यथा करने में समर्थ हूँ; परन्तु मैं भक्त-वाक्य को मिथ्या करने की इच्छा नहीं करता हूँ क्योंकि यही मेरा नियम हैं। हे वेदशिरा, मैं तुम्हारे मस्तक पर अपने चरणद्वय विन्यस्त करूँगा, इस से कदाचित तुम्हें गरुड़-भय नहीं रहेगा। हे अश्वशिरा! तुम भी मेरा वचन श्रवण करो। तुम शोक मत करो, काकरूप में भी तुम्हें निश्चित योगसिद्धियुक्त उत्तम त्रिकालज्ञान रहेगा।'' तत्पश्चात् ऐसा कहकर भगवान विष्णु वहाँ से प्रस्थान कर गये।

कालांतर में अश्वशिरा ने नीलपर्वत पर योगीवर ''भुशंड काक'' होकर जन्मग्रहण किया। भुशंड सर्वशास्त्र में उज्ज्वल ज्ञानसम्पन्न महातेजोमय साक्षात् श्रीराम-भक्त हुआ। इन्होंने महात्मा गरुड़ के निकट रामायण पाठ किया था। दूसरी ओर चाक्षुष मन्वंतर में प्रचेता-पुत्र दक्ष ने कश्यप महर्षि के हस्त में तदीय मनोहर एकादश कन्यायों को अर्पण किया था; तन्मध्य कद्रु सब में ज्येष्ठा है; वे ही द्वापर के कृष्ण- लीला में वसुदेव प्रिया रोहिणी एवं उनसे ही बलराम, पुत्ररूप में आविर्भूत हुए थे। यह कद्रु कोटि-कोटि महासर्प प्रसव की थीं। वे सब ही महायोद्धा, दु:सह विषबल से बलवान, उग्र स्वभाव सम्पन्न एवं महामणिधर हैं। तन्मध्य कोई पंचशतानन या शतानन हैं। वेदशिरा ने उन समस्त सर्प के मध्य ''महाफणी कालिय'' होकर जन्मग्रहण किया। उनसब के मध्य अग्रज फणीवर परान्तप शेषनाग अनन्त ने द्वापर में बलराम होकर जन्मग्रहण किया था। परात्पर संकर्षण, भगवत् निर्देश से भूभार धारणार्थ पाताल में प्रविष्ट होने पर ब्रह्माजी के आदेशानुसार अन्यान्य फणीन्द्रगणों ने उनका अनुगमन पूर्वक पाताल में प्रवेश किया। अनन्तर कोई अतल पर, कोई सुतल पर, कोई महातल पर, फिर कोई तलातल पर एवं किसी-किसी ने रसातल पर आसन ग्रहण किया। ब्रह्माजी ने उनसब के वसवास के लिए पृथिवी-वक्ष पर रमणक द्वीप निर्दिष्ट कर दिया। तब कालिय प्रमुख सकल सर्पगण उस रमणक द्वीप में सुख समृद्ध होकर निवास करने लगे। *(गर्ग संहिता से संग्रहीत)*

–हिन्दी अनुवाद–मातृचरणाश्रिता श्रीमती ज्योति पारेख